व्यारव्यात्मक शतरुद्रियस्तोत्र

धृतराष्ट्र ने पूछा–संजय! धृष्टद्युम्न के द्वारा अतिरथी वीर द्रोणाचार्य के मारे जाने पर मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने आगे कौन–सा कार्य किया?

संजय ने कहा–भरतश्रेष्ठ! धृष्टद्युम्न द्वारा अतिरथी वीर द्रोणाचार्य के मारे जाने पर जब समस्त कौरव भाग खड़े हुए, उस समय अपने को विजय दिलानेवाली एक अत्यन्त आश्चर्यमयी घटना देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुन ने अकस्मात् वहाँ आये हुए वेदव्यासजी से उसके सम्बन्ध में इस प्रकार पूछा।

अर्जुन बोले–महर्षे! जब मैं अपने निर्मल बाणों द्वारा शत्रुसेना का संहार कर रहा था, उस समय मुझे दिखायी दिया कि एक अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष मेरे आगे–आगे चल रहे हैं। महामुने! वे जलता हुआ शूल हाथ में लेकर जिस ओर जाते उसी दिशा में मेरे शत्रु विदीर्ण हो जाते थे। उन्होंने ही मेरे समस्त शत्रुओं को मार भगाया है, किंतु लोग समझते हैं कि मैंने ही उन्हें मारा और भगाया है। शत्रुओं की सारी सेनाएँ उन्हीं के द्वारा नष्ट की गयीं, मैं तो केवल उनके पीछ–पीछे चलता था। भगवन्! मुझे बताइये, वे महापुरुष कौन थे? मैंने उन्हें हाथ में त्रिशूल लिये देखा था। वे सूर्य के समान तेजस्वी थे। वे अपने पैरों से पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते थे। त्रिशूल को अपने हाथ से अलग कभी नहीं छोड़ते थे। उनके तेज से उस एक ही त्रिशूल से सहस्त्रों नये–नये शूल प्रकट होकर शत्रुओं पर गिरते थे।

व्यासजी ने कहा–अर्जुन! जो प्रजापतियों में प्रथम, तेजःस्वरूप, अन्तर्यामी तथा सर्वसमर्थ हैं, भूर्लोक, भुवर्लोक आदि समस्त भुवन जिनके स्वरूप हैं, जो दिव्य विग्रहधारी तथा सम्पूर्ण लोकों के शासक एवं स्वामी हैं, उन्हीं वरदायक ईश्वर भगवान् शंकर का तुमने दर्शन किया है। वे वरद देवता सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर हैं, तुम उन्हीं की शरण में जाओ। वे महान् देव हैं। उनका हृदय महान् है। वे सब पर शासन करनेवाले, सर्वव्यापी और जटाधारी हैं। उनके तीन नेत्र और विशाल भुजाएँ हैं, रुद्र उनकी संज्ञा है, उनके मस्तक पर शिखा तथा शरीर पर वल्कल वस्त्र शोभा देता है। महादेव, हर और स्थाणु आदि नामों से प्रसिद्ध वरदायक भगवान् शिव सम्पूर्ण भुवनों के स्वामी हैं। वे ही जगत् के कारणभूत अव्यक्त प्रकृति हैं। वे किसी से भी पराजित नहीं होते हैं। जगत् को प्रेम और सुख की प्राप्ति उन्हीं से होती है। वे ही सबके अध्यक्ष हैं। वे ही जगत् की उत्पत्ति के स्थान, जगत् के बीज, विजयशील, जगत् के आश्रय, सम्पूर्ण विश्व के आत्मा, विश्वविधाता, विश्वरूप और यशस्वी हैं। वे ही विश्वेश्वर, विश्वनियन्ता, कर्मों के फलदाता ईश्वर और प्रभावशाली हैं। वे ही सबका कल्याण करनेवाले और स्वयम्भू हैं। सम्पूर्ण भूतों के स्वामी तथा भूत, भविष्य और वर्तमान के कारण भी वे ही हैं। वे ही योग और योगेश्वर हैं, वे ही सर्वस्वरूप और सम्पूर्ण लोकेश्वरों के भी ईश्वर हैं। सबसे श्रेष्ठ, सम्पूर्ण जगत् से श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम परमेष्ठी भी वे ही हैं। तीनों लोकों के एकमात्र स्त्रष्टा, त्रिलोकी के आश्रय, शुद्धात्मा, भव, भीम और चन्द्रमा का मुकुट धारण करनेवाले भी वे ही हैं। वे सनातन देव इस पृथ्वी को धारण करनेवाले तथा सम्पूर्ण वागीश्वरों के भी ईश्वर हैं। उन्हें जीतना असम्भव है। वे जगदीश्वर जन्म, मृत्यु और जरा आदि विकारों

से परे हैं। वे ज्ञानस्वरूप, ज्ञानगम्य तथा ज्ञान में श्रेष्ठ हैं। उनके स्वरूप को समझ लेना अत्यन्त कठिन है। वे अपने भक्तों को कृपापूर्वक मनोवाञ्छित उत्तम फल देनेवाले हैं।

भगवान् शंकर के दिव्य पार्षद नाना प्रकार के रूपों में दिखायी देते हैं। उनमें से कोई वामन (बौने), कोई जटाधारी, कोई मुण्डित मस्तकवाले और कोई छोटी गर्दनवाले हैं। किन्हीं के पेट बड़े हैं तो किन्हीं के सारे शरीर ही विशाल हैं। कुछ पार्षदों के कान बहुत बड़े-बड़े हैं। वे सब बड़े उत्साही होते हैं। कितनों के मुख विकृत हैं और कितनों के पैर। अर्जुन! उन सबके वेष भी बड़े विकराल हैं। ऐसे स्वरूपवाले वे सभी पार्षद महान् देवता भगवान् शंकर की सदा ही पूजा करते हैं। तात! उन तेजस्वी पुरुष के रूप में वे भगवान् शंकर ही कृपा करके तुम्हारे आगे-आगे चलते हैं।

कुन्तीनन्दन! उस रोमाञ्चकारी घोर संग्राम में अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्य आदि प्रहारकुशल बड़े-बड़े धनुर्धरों से सुरक्षित उस कौरव-सेना को उस समय बहुरूपधारी महाधनुर्धर भगवान् महेश्वर के सिवा दूसरा कौन मन से भी नष्ट कर सकता था। जब वे ही सामने आकर खड़े हो जायँ तो वहाँ ठहरने का साहस कोई नहीं कर सकता है। तीनों लोकों में कोई भी प्राणी उनकी समानता करनेवाला नहीं है। संग्राम में भगवान् शंकर के कुपित होने पर उनकी गन्ध से भी शत्रु बेहोश होकर काँपने लगते और अधमरे होकर गिर जाते हैं। उनको नमस्कार करनेवाले देवता सदा स्वर्गलोक में निवास करते हैं। दूसरे भी जो मानव इस लोक में उन्हें नमस्कार करते हैं, वे भी स्वर्गलोक पर विजय पाते हैं। जो भक्त मनुष्य सदा अनन्यभाव से वरदायक देवता कल्याणस्वरूप, सर्वेश्वर उमानाथ भगवान् रुद्र की उपासना करते हैं, वे भी इहलोक में सुख पाकर अन्त में परमगति को प्राप्त होते हैं।

नमस्कुरुष्व कौन्तेय तस्मै शान्ताय वै सदा।। (28)
रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे।
कपर्दिने करालाय हर्यक्षवरदाय च।। (29)

कुन्तीनन्दन! अतः तुम भी उन शान्तस्वरूप भगवान् शिव को सदा नमस्कार किया करो। जो रुद्र, नीलकण्ठ, कनिष्ठ (सूक्ष्म या दीप्तिमान्), उत्तम तेज से सम्पन्न, जटाजूटधारी, विकरालस्वरूप, पिङ्गल नेत्रवाले तथा कुबेर को वर देनेवाले हैं, उन भगवान् शिव को नमस्कार है।

याम्यायाव्यक्तकेशाय सद्वृत्ते शङ्कराय च।
काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च।। (30)
हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च।
भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे।। (31)

जो यम के अनुकूल रहनेवाले काल हैं, अव्यक्त स्वरूप आकाश ही जिनका केश है, जो सदाचारसम्पन्न, सबका कल्याण करनेवाले, कमनीय, पिङ्गलनेत्र, सदा स्थित रहनेवाले और अन्तर्यामी पुरुष हैं, जिनके केश भूरे एवं पिङ्गल वर्ण के हैं, जिनका मस्तक मुण्डित है, जो दुबले-पतले और

भवसागर से पार उतारनेवाले हैं, जो सूर्यस्वरूप, उत्तम तीर्थ और अत्यन्त वेगशाली हैं, उन देवाधिदेव महादेव को नमस्कार है।

बहुरूपाय सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे।
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे।। (32)

जो अनेक रूप धारण करनेवाले, सर्वस्वरूप तथा सबके प्रिय हैं, वल्कल आदि वस्त्र जिन्हें प्रिय हैं, जो मस्तक पर पगड़ी धारण करते हैं, जिनका मुख सुन्दर है, जिनके सहस्रों नेत्र हैं तथा जो वर्षा करनेवाले हैं, उन भगवान् शंकर को नमस्कार है।

गिरिशाय प्रशान्ताय यतये चीरवाससे।
हिरण्यबाहवे राज्ञे उग्राय पतये दिशाम्।। (33)

जो पर्वत पर शयन करनेवाले, परम शान्त, यतिस्वरूप, चीरवस्त्रधारी, हिरण्यबाहु(सोने के आभूषणों से विभूषित बाँहवाले), राजा(दीप्तिमान्), उग्र(भयंकर) तथा दिशाओं के अधिपति हैं(उन भगवान् शंकर को नमस्कार है)।

पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः।
वृक्षाणां पतये चैव गवां च पतये नमः।। (34)

जो मेघों के अधिपति तथा सम्पूर्ण भूतों के स्वामी हैं, उन्हें नमस्कार है। वृक्षों के पालक और गौओं के अधिपतिरूप आपको नमस्कार है।

वृक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च ।
स्रुवहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च।। (35)

जिनका शरीर वृक्षों से आच्छादित है, जो सेना के अधिपति और शरीर के मध्यवर्ती(अन्तर्यामी) हैं, यजमानरूप से जो अपने हाथ में स्रुवा धारण करते हैं, जो दिव्यस्वरूप, धनुर्धर और भृगुवंशी परशुरामस्वरूप हैं, उनको नमस्कार है।

बहुरूपाय विश्वस्य पतये मुञ्जवाससे।
सहस्रशिरसे चैव सहस्रनयनाय च।। (36)
सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च।

जिनके बहुत-से रूप हैं, जो इस विश्व के पालक होकर भी मूँज का कौपीन धारण करते हैं, जिनके सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्र, सहस्रों भुजाएँ और सहस्रों पैर हैं, उन भगवान् शंकर को नमस्कार है।

शरणं गच्छ कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम्।। (37)
उमापतिं विरूपाक्षं दक्षयज्ञनिबर्हणम्।
प्रजानां पतिमव्यग्रं भूतानां पतिमव्ययम्।। (38)

कुन्तीनन्दन! तुम उन्हीं वरदायक भुवनेश्वर, उमावल्लभ, त्रिनेत्रधारी, दक्षयज्ञविनाशक, प्रजापति, व्यग्रतारहित और अविनाशी भगवान् भूतनाथ की शरण में जाओ।

कपर्दिनं वृषावर्तं वृषनाभं वृषध्वजम् ।
वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृषर्षभम्।। (39)
वृषाङ्कं वृषभोदारं वृषभं वृषभेक्षणम् ।
वृषायुधं वृषशरं वृषभूतं वृषेश्वरम्।। (40)

जो जटाजूटधारी हैं, जिनका घूमना परम श्रेष्ठ है, जो श्रेष्ठ नाभि से सुशोभित, ध्वजा पर वृषभ का चिन्ह धारण करनेवाले, वृषदर्प(प्रबल अंहकारवाले), वृषपति(धर्मस्वरूप वृषभ के अधिपति), धर्म को ही उच्चतम माननेवाले तथा धर्म से भी सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनके ध्वज में साँड़ का चिन्ह अङ्कित है, जो धर्मात्माओं में उदार, धर्मस्वरूप, वृषभ के समान विशाल नेत्रोंवाले, श्रेष्ठ आयुध और श्रेष्ठ बाण से युक्त, धर्मविग्रह तथा धर्म के ईश्वर, उन भगवान् की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मनिवासिनम् ।
लोकेशं वरदं मुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्।। (41)
त्रिशूलपाणिं वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम्।
पिनाकिनं खड्गधरं लोकानां पतिमीश्वरम्।। (42)
प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं चीरवाससम्।

कोटि – कोटि ब्रह्माण्डों को धारण करने के कारण जिनका उदर और शरीर विशाल है, जो व्याघ्रचर्म ओढ़ा करते हैं, जो लोकेश्वर, वरदायक, मुण्डितमस्तक, ब्राह्मणहितैषी तथा ब्राह्मणों के प्रिय हैं। जिनके हाथ में त्रिशूल, ढाल, तलवार और पिनाक आदि अस्त्र शोभा पाते हैं, जो वरदायक, प्रभु, सुन्दर शरीरधारी, तीनों लोकों के स्वामी तथा साक्षात् ईश्वर हैं, उन चीरवस्त्रधारी, शरणागतवत्सल भगवान् शिव की मैं शरण लेता हूँ।

नमस्तस्मै सुरेशाय यस्य वैश्रवणः सखा।। (43)
सुवाससे नमस्तुभ्यं सुव्रताय सुधन्विने।
धनुर्धराय देवाय प्रियधन्वाय धन्विने।। (44)
धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय ते नमः।
उग्रायुधाय देवाय नमः सुरवराय च।। (45)

कुबेर जिनके सखा हैं, उन देवेश्वर शिव को नमस्कार है। प्रभो! आप उत्तम वस्त्र, उत्तम व्रत और उत्तम धनुष धारण करते हैं। आप धनुर्धर देवता को धनुष प्रिय है, आप धन्वी, धन्वन्तर, धनुष और धन्वाचार्य हैं, आपको नमस्कार है। भयंकर आयुध धारण करनेवाले सुरश्रेष्ठ महादेवजी को नमस्कार है।

नमोऽस्तु बहुरूपाय नमोऽस्तु बहुधन्विने।
नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्मै तपस्विने।। (46)

अनेक रूपधारी शिव को नमस्कार हैं, बहुत-से धनुष धारण करनेवाले रुद्रदेव को नमस्कार है, आप स्थाणुरूप हैं, आपको नमस्कार है, उन तपस्वी शिव को नित्य नमस्कार है।

नमोऽस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च वै नमः।
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः।। (47)

त्रिपुरनाशक और भगनेत्रविनाशक भगवान् शिव को बारंबार नमस्कार है। वनस्पतियों के पति तथा नरपतिरूप महादेवजी को नमस्कार है।

मातृणां पतये चैव गणानां पतये नमः।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः।। (48)

मातृकाओं के अधिपति और गणों के पालक शिव को नमस्कार है। गोपति और यज्ञपति शंकर को नित्य नमस्कार है।

अपां च पतये नित्यं देवानां पतये नमः।
पूष्णो दन्तविनाशाय त्र्यक्षाय वरदाय च।। (49)
नीलकण्ठाय पिङ्गाय स्वर्णकेशाय वै नमः।

जलपति तथा देवपति को नित्य नमस्कार है। पूषा के दाँत तोड़नेवाले, त्रिनेत्रधारी वरदायक शिव को नमस्कार है। नीलकण्ठ, पिङ्गलवर्ण और सुनहरे केशवाले भगवान् शंकर को नमस्कार है।

कर्माणि यानि दिव्यानि महादेवस्य धीमतः।। (50)
तानि ते कीर्तयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम्।

अर्जुन! अब मैं परम बुद्धिमान् महादेवजी के जो दिव्य कर्म हैं, उनका अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा मैंने सुन रक्खा है, वैसा ही तुम्हारे समक्ष वर्णन करता हूँ।

न सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न राक्षसाः।। (51)
सुखमेधन्ति कुपिते तस्मिन्नपि गुहागताः।

यदि वे कुपित हो जायँ तो देवता, असुर, गन्धर्व और राक्षस इस लोक में अथवा पाताल में छिप जाने पर भी चैन से नहीं रहने पाते हैं।

दक्षस्य यजमानस्य विधिवत् सम्भृतं पुरा।। (52)
विव्याध कुपितो यज्ञं निर्दयस्त्वभवत् तदा।
धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च।। (53)

पहले की बात है, वे यज्ञपरायण दक्ष पर कुपित हो गये थे। उस समय उन्होंने उनके विधिपूर्वक किये जानेवाले यज्ञ को नष्ट कर दिया था। उन दिनों वे निर्दय हो गये थे और धनुष द्वारा बाण छोड़कर

बड़े जोर-जोर से गर्जना करने लगे थे।

ते न शर्म कुतः शान्तिं लेभिरे स्म सुरास्तदा।
विद्रुते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे।। (54)

देवताओं को उस समय कहीं भी सुख और शान्ति नहीं मिली, महेश्वर के कुपित होने से सहसा यज्ञ में उपद्रव खड़ा हो गया था।

तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः।
वभूवुर्वशगाः पार्थ निपेतुश्च सुरासुराः।। (55)

पार्थ! उनके धनुष की प्रत्यञ्चा के गम्भीर घोष से अत्यन्त व्याकुल हो सम्पूर्ण लोक उनके अधीन हो गये। देवता और असुर सभी धरती पर गिर पड़े।

आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश्चकम्पे च वसुंधरा।
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त दिशो नागाश्च मोहिताः।। (56)

समुद्र के जल में ज्वार आ गया, धरती काँपने लगी, पर्वत टूट-फूटकर बिखरने लगे और दिग्गज मूर्छित हो गये।

अन्धेन तमसा लोका न प्राकाशन्त संवृताः।
जघ्निवान् सह सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः।। (57)

घोर अन्धकार से आच्छादित हो जाने के कारण सम्पूर्ण लोकों में कहीं भी प्रकाश नहीं रह गया। भगवान् शिव ने सूर्यसहित सम्पूर्ण ज्योतियों की प्रभा नष्ट कर दी।

चुक्षुभुर्भयभीताश्च शान्तिं चक्रुस्तथैव च।
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च सुखैषिणः।। (58)

महर्षि भी भयभीत एवं क्षुब्ध हो उठे। वे सम्पूर्ण भूतों के तथा अपने लिये भी सुख चाहते हुए पुण्याहवाचन आदि शान्ति कर्म करने लगे।

पूषाणमभ्यद्रवत शंकरः प्रहसन्निव।
पुरोडाशं भक्षयतो दशनान् वै व्यशातयत्।। (59)

उस समय हँसते हुए-से भगवान् शङ्कर ने पूषा पर आक्रमण किया। वे पुरोडाश खा रहे थे। उन्होंने उनके सारे दाँत तोड़ डाले।

ततो निश्चक्रमुर्देवा वेपमाना नताः स्म ते।
पुनश्च संदधे दीप्तान् देवानां निशिताञ्शरान्।। (60)

तदनन्तर सारे देवता नतमस्तक हो भय से थरथर काँपते हुए यज्ञशाला से बाहर निकल गये। तब भगवान् शिव ने देवताओं को लक्ष्य करके तीखे और तेजस्वी बाणों का संधान किया।

सधूमान् सस्फुलिङ्गांश्च विद्युत्तोयदसंनिभान्।

तं दृष्ट्वा तु सुराः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम्।। (61)
रुद्रस्य यज्ञभागं च विशिष्टं ते त्वकल्पयन्।

धूम और चिनगारियोंसहित वे बाण बिजली सहित मेघों के समान जान पड़ते थे। तब संपूर्ण देवताओं ने भगवान् महेश्वर को कुपित देख उनके चरणों में प्रणाम किया और रुद्र के लिये उन्होंने विशिष्ट यज्ञभाग की कल्पना की।

भयेन त्रिदशा राजञ्छरणं च प्रपेदिरे।। (62)
तेन चैवातिकोपेन स यज्ञः संधितस्तदा।
भग्नाश्चापि सुरा आसन् भीताश्चाद्यापि तं प्रति।। (63)

राजन्! सब देवता भयभीत हो भगवान् शङ्कर की शरण में आये। तब क्रोध शान्त होने पर उन्होंने उस यज्ञ को पूर्ण किया। उन दिनों देवता लोग भाग खड़े हुए थे, तभी से आजतक वे देवता उनसे डरते रहते हैं।

असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि।
आयसं राजतं चैव सौवर्णं परमं महत्।। (64)

पूर्वकाल में परम पराक्रमी तीन असुरों के आकाश में तीन नगर थे। एक लोहे का, दूसरा चाँदी का और तीसरा अत्यन्त विशाल नगर सोने का बना हुआ था।

सौवर्णं कमलाक्षस्य तारकाक्षस्य राजतम्।
तृतीयं तु पुरं तेषां विद्युन्मालिन आयसम्।। (65)

उनमें से सोने का नगर कमलाक्ष के, चाँदी का तारकाक्ष के तथा तीसरा लोहे का बना हुआ नगर विद्युन्माली के अधिकार में था।

न शक्तस्तानि मघवान् भेत्तुं सर्वायुधैरपि।
अथ सर्वे सुरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः।। (66)

इन्द्र सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करके भी उन नगरों का भेदन न कर सके। तब उनसे पीड़ित हुए सम्पूर्ण देवता भगवान् शङ्कर की शरण में गये।

ते तमूचुर्महात्मानं सर्वे देवाः सवासवाः।
ब्रह्मदत्तवरा ह्येते घोरास्त्रिपुरवासिनः।। (67)
पीडयन्त्यधिकं लोकं यस्मात् ते वरदर्पिताः।

इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं ने महात्मा भगवान् शङ्कर से कहा-'प्रभो! ब्रह्माजी से वरदान पाकर ये त्रिपुर निवासी घोर दैत्य सम्पूर्ण जगत् को अधिकाधिक पीड़ा दे रहे हैं; क्योंकि वरदान प्राप्त होने से उनका घमण्ड बहुत बढ़ गया है।'

त्वदृते देवदेवेश नान्यः शक्तः कथंचन।। (68)

हन्तुं दैत्यान् महादेव जहि तांस्त्वं सुरद्विषः।

'देवदेवेश्वर महादेव! आपके सिवा दूसरा कोई उन दैत्यों का वध करने में समर्थ नहीं है; अतः आप उन देवद्रोहियों को मार डालिये।'

रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु।। (69)
निपातयिष्यसे चैतानसुरान् भुवनेश्वर।

'भुवनेश्वर! रुद्र! आप जब इन असुरों का विनाश कर डालेंगे, तब से सम्पूर्ण यज्ञकर्मों में जो पशु (यज्ञ के साधनभूत उपकरण) होंगे, वे रुद्र के भाग समझे जायँगे।'

स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा देवानां हितकाम्यया।। (70)
गन्धमादनविन्धयौ च कृत्वा वंशध्वजौ हरः।
पृथ्वीं ससागरवनां रथं कृत्वा तु शङ्करः।। (71)
अक्षं कृत्वा तु नागेन्द्रं शेषं नाम त्रिलोचनः।
चक्रे कृत्वा तु चन्द्रार्कौ देवदेवः पिनाकधृक्।। (72)
अणी कृत्वैलपत्रं च पुष्पदन्तं च त्र्यम्बकः।
यूपं कृत्वा तु मलयमवनाहं च तक्षकम्।। (73)

देवताओं के ऐसा कहने पर भगवान् शिव ने 'तथास्तु' कहकर उनके हित की इच्छा से गन्धमादन और विन्ध्याचल इन दो पर्वतों को अपने रथ के दो पार्श्ववर्ती ध्वज बनाये। फिर समुद्र और पर्वतोंसहित समूची पृथ्वी को रथ बनाकर नागराज शेष को उस रथ का धुरा बनाया। तत्पश्चात् त्रिनेत्रधारी पिनाकपाणि देवाधिदेव महादेव ने चन्द्रमा और सूर्य दोनों को रथ के दो पहिये बनाये। एलपत्र के पुत्र और पुष्पदन्त को जूए की कीलें बनाया। फिर त्र्यम्बक ने मलयाचल को यूप और तक्षक नाग को जूआ बाँधने की रस्सी बना लिया।

योक्त्राङ्गानि च सत्त्वानि कृत्वा शर्वःप्रतापवान्।
वेदान् कृत्वाऽथ चतुरश्चतुरश्वान् महेश्वरः।। (74)

इसी प्रकार प्रतापी भगवान् महेश्वर ने अन्य प्राणियों को जोते और बागडोर आदि के रूप में रखकर चारों वेद ही रथ के चार घोड़े बना लिये।

उपवेदान् खलीनांश्च कृत्वा लोकत्रयेश्वरः।
गायत्रीं प्रग्रहं कृत्वा सावित्रीं च महेश्वरः।। (75)

तत्पश्चात् तीनों लोकों के स्वामी महेश्वर ने उपवेदों को लगाम बनाकर गायत्री और सावित्री को प्रग्रह (डोरी या रस्सी) बना लिया।

कृत्वोङ्कारं प्रतोदं च ब्रह्माणं चैव सारथिम्।
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा तु वासुकिम्।। (76)

विष्णुं शरोत्तमं कृत्वा शल्यमग्निं तथैव च।
वायुंकृत्वाथ वाजाभ्यां पुङ्खे वैवस्वतं यमम्।। (77)

फिर ओङ्कार को चाबुक, ब्रह्माजी को सारथि, मन्दराचल को गाण्डीव धनुष, वासुकिनाग को उसकी प्रत्यञ्चा, भगवान् विष्णु को उत्तम बाण, अग्निदेव को उस बाण का फल, वायु को उसके पङ्ख और वैवस्वत यमको उसकी पूँछ बनाया।

विद्युत् कृत्वाथ निश्राणं मेरुं कृत्वाथ वै ध्वजम्।
आरुह्य स रथं दिव्यं सर्वदेवमयं शिवः।। (78)
त्रिपुरस्य वधार्थाय स्थाणुः प्रहरतां वरः।
असुराणामन्तकरः श्रीमानतुलविक्रमः।। (79)

बिजली को उस बाण की तीखी धार बनाकर मेरु पर्वत को प्रधान ध्वज के स्थान में रक्खा। इस प्रकार सर्वदेवमय दिव्य रथ तैयार करके असुरों का अन्त करनेवाले, अतुल पराक्रमी, योद्धाओं में श्रेष्ठ तथा स्थिर रहनेवाले श्रीमान् भगवान् शिव त्रिपुरवध के लिये उस पर आरूढ़ हुए।

स्तूयमानः सुरैः पार्थ ऋषिभिश्च तपोधनैः।
स्थानं माहेश्वरं कृत्वा दिव्यमप्रतिमं प्रभुः।। (80)
अतिष्ठत् स्थाणुभूतः स सहस्रं परिवत्सरान्।

पार्थ! उस समय सम्पूर्ण देवता और तपोधन महर्षि भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे। उन भगवान् ने उस अनुपम एवं दिव्य माहेश्वर स्थान(रथ) का निर्माण करके उस पर एक हजार वर्षोंतक स्थिरभाव से खड़े रहे।

यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे पुराणि च।। (81)
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि विभेद सः।

जब वे तीनों पुर आकाश में एकत्र हुए, तब उन्होंने तीन गाँठ और तीन फलवाले बाण से उन तीनों पुरों को विदीर्ण कर डाला।

पुराणि न च तं शेकुर्दानवाः प्रतिवीक्षितुम्।। (82)
शरं कालाग्निसंयुक्तं विष्णुसोमसमायुतम्।

उस समय दानव उन नगरों की ओर और कालाग्नि से संयुक्त एवं विष्णु तथा सोम की शक्ति से सम्पन्न उस बाण की ओर भी आँख उठाकर देख न सके।

पुराणि दग्धवन्तं तं देवी याता प्रवीक्षितुम्।। (83)
बालमङ्कगतं कृत्वा स्वयं पञ्चशिखं पुनः।

जिस समय वे तीनों पुरों को दग्ध कर रहे थे, उस समय पार्वती देवी भी उन्हें देखने के लिये एक पाँच शिखावाले बालक को गोद में लेकर वहाँ गयीं।

उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत् सुरान्।। (84)
असूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः।
बाहुं सवज्रं तं तस्य क्रुद्धस्यास्तम्भयत् प्रभुः।। (85)
प्रहस्य भगवांस्तूर्णं सर्वलोकेश्वरो विभुः।

पार्वतीदेवी ने देवताओं से पूछा – 'पहचानते हो, यह कौन है?' उनके इस प्रश्न से इन्द्र के हृदय में असूया और क्रोध की आग जल उठी, वे उस बालक पर वज्र का प्रहार करना ही चाहते थे कि सर्वलोकेश्वर सर्वव्यापी भगवान् शंकर ने हँसकर उनकी वज्रसहित बाँह को स्तम्भित कर दिया।

ततः स स्तम्भितभुजः शक्रो देवगणैर्वृतः।। (86)
जगाम ससुरस्तूर्णं ब्रह्माणं प्रभुमव्ययम्।

तदनन्तर स्तम्भित हुई भुजा के साथ ही देवताओंसहित इन्द्र तुरंत ही वहाँ से अविनाशी भगवान् ब्रह्माजी के पास गये।

ते तं प्रणम्य शिरसा प्रोचुः प्राञ्जलयस्तदा।। (87)
किमप्यङ्कगतं ब्रह्मन् पार्वत्या भूतमद्भुतम्।
बालरूपधरं दृष्ट्वा नास्माभिरभिलक्षितः।। (88)

देवताओं ने मस्तक झुकाकर ब्रह्माजी को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा – 'ब्रह्मन्! पार्वतीजी की गोद में बालरूपधारी एक अद्भुत प्राणी था, जिसे देखकर भी हमलोग पहचान नहीं सके हैं।

तस्मात् त्वां प्रष्टुमिच्छामो निर्जिता येन वै वयम्।
अयुध्यता हि बालेन लीलया सपुरंदराः।। (89)

'अतः हमलोग आप से उसके विषय में पूछना चाहते हैं, उस बालक ने बिना युद्ध के ही खेल – खेल में इन्द्रसहित हम देवताओं को परास्त कर दिया।'

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
ध्यात्वा स शम्भुं भगवान् बालं चामिततेजसम्।। (90)

उनकी यह बात सुनकर ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मा ने ध्यान करके अमिततेजस्वी बालरूपधारी शंकर को पहचान लिया।

उवाच भगवान् ब्रह्मा शक्रादींश्च सुरोत्तमान्।
चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान् हरः।। (91)
तस्मात् परतरं नान्यत् किंचिदस्ति महेश्वरात्।
यो दृष्टो ह्युमया सार्धं युष्माभिरमितद्युतिः।। (92)
स पार्वत्याः कृते शर्वः कृतवान् बालरूपताम्।
ते मया सहिता यूयं प्रापयध्वं तमेव हि।। (93)

तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्मा ने उन देवश्रेष्ठ इन्द्र आदि से कहा– 'देवताओ! वे चराचर जगत् के स्वामी साक्षात् भगवान् शंकर थे। उन महेश्वर से बढ़कर दूसरी कोई सत्ता नहीं है। तुमलोगों ने पार्वतीजी के साथ जिस अमिततेजस्वी बालक का दर्शन किया है, उसके रूप में भगवान् शंकर ही थे। उन्होंने पार्वतीजी की प्रसन्नता के लिये बालरूप धारण कर लिया था; अतः तुमलोग मेरे साथ उन्हीं की शरण में चलो।'

स एष भगवान् देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः।
न सम्बुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम्।। (94)
सप्रजापतयः सर्वे बालार्कसदृशप्रभम्।

उस बालक के रूप में ये सर्वलोकेश्वर प्रभु भगवान् महादेव ही थे, किंतु प्रजापतियोंसहित सम्पूर्ण देवता बालसूर्य के सदृश कान्तिमान् उन जगदीश्वर को पहचान न सके।

अथाभ्येत्य ततो ब्रह्मा दृष्ट्वा स च महेश्वरम्।। (95)
अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तं पितामहः।

तदनन्तर ब्रह्माजी ने निकट जाकर भगवान् महेश्वर को देखा और ये ही सबसे श्रेष्ठ हैं, ऐसा जानकर उनकी वन्दना की।

ब्रह्मोवाच

त्वं यज्ञो भुवनस्यास्य त्वं गतिस्त्वं परायणम्।। (96)
त्वं भवस्त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम्।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम्।। (97)

ब्रह्माजी बोले – भगवन्! आप ही यज्ञ, आप ही इस विश्व के सहारे और आप ही सबको शरण देनेवाले हैं, आप ही सबको उत्पन्न करनेवाले भव हैं, आप ही महादेव हैं और आप ही परमधाम एवं परमपद हैं। आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को व्याप्त कर रक्खा है।

भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते।
प्रसादं कुरु शक्रस्य त्वया क्रोधार्दितस्य वै।। (98)

भूत, वर्तमान और भविष्य के स्वामी भगवन्! लोकनाथ! जगत्पते! ये इन्द्र आपके क्रोध से पीड़ित हो रहे हैं। आप इन पर कृपा कीजिये।

व्यास उवाच

पद्मयोनिवचः श्रुत्वा ततः प्रीतो महेश्वरः।
प्रसादाभिमुखो भूत्वा अट्टहासमथाकरोत्।। (99)

व्यासजी कहते हैं– पार्थ! ब्रह्माजी की बात सुनकर भगवान् महेश्वर प्रसन्न हो गये और कृपा के लिये उद्यत हो ठठाकर हँस पड़े।

ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः।
अभवच्च पुनर्बाहुर्यथाप्रकृति वज्रिणः।। (100)

तब देवताओं ने पार्वती देवी तथा भगवान् शंकर को प्रसन्न किया। फिर वज्रधारी इन्द्र की बाँह जैसी पहले थी, वैसी हो गयी।

तेषां प्रसन्नो भगवान् सपत्नीको वृषध्वजः।
देवानां त्रिदशश्रेष्ठो दक्षयज्ञविनाशनः।। (101)

दक्षयज्ञ का विनाश करनेवाले देवश्रेष्ठ भगवान् वृषध्वज अपनी पत्नी उमा के साथ देवताओं पर प्रसन्न हो गये।

स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निःसर्वश्च सर्ववित्।
स चेन्द्रश्चैव वायुश्च सोऽश्विनौ च स विद्युतः।। (102)

वे ही रुद्र हैं, वे ही शिव हैं, वे ही अग्नि हैं, वे ही सर्वस्वरूप एवं सर्वज्ञ हैं। वे ही इन्द्र और वायु हैं, वे ही दोनों अश्विनीकुमार तथा विद्युत् हैं।

स भवः स च पर्जन्यो महादेवः सनातनः।
स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः।। (103)

वे ही भव, वे ही मेघ और वे ही सनातन महादेव हैं। चन्द्रमा, ईशान, सूर्य और वरुण भी वे ही हैं।

स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो रात्र्यहानि तु।
मासार्धमासा ऋतवः संध्ये संवत्सरश्च सः।। (104)

वे ही काल, अन्तक, मृत्यु, यम, रात्रि, दिन, मास, पक्ष, ऋतु, संध्या और संवत्सर हैं।

धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः।। (105)

वे ही धाता, विधाता, विश्वात्मा और विश्वरूपी कार्य के कर्ता हैं। वे शरीररहित होकर भी सम्पूर्ण देवताओं के शरीर धारण करते हैं।

सर्वदेवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः।
शतधा सहस्रधा चैव भूयः शतसहस्रधा।। (106)

सम्पूर्ण देवता सदा उनकी स्तुति करते हैं। वे महादेवजी एक होकर भी अनेक हैं। सौ, हजार और लाखों रूपों में वे ही विराज रहे हैं।

द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोरा चान्या शिवा चान्या ते तनू बहुधा पुनः।। (107)

वेदज्ञ ब्राह्मण उनके दो शरीर मानते हैं, एक घोर और दूसरा शिव। ये दोनों पृथक-पृथक हैं

और उन्हीं से पुनः बहुसंख्यक शरीर प्रकट हो जाते हैं।

घोरा तु या तनुस्तस्य सोऽग्निर्विष्णुः स भास्करः।
सौम्या तु पुनरेवास्य आपो ज्योतींषि चन्द्रमाः।। (108)

उनका जो घोर शरीर है, वही अग्नि, विष्णु और सूर्य है और उनका सौम्य (शिव) शरीर ही जल, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा है।

वेदाः साङ्गोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिश्चयाः।
यदत्र परमं गुह्यं स वै देवो महेश्वरः।। (109)

वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, पुराण और अध्यात्मशास्त्र के जो सिद्धान्त हैं तथा उनमें भी जो परम रहस्य है, वह भगवान् महेश्वर ही हैं।

ईदृशश्च महादेवो भूयांश्च भगवानजः।
न हि सर्वे मया शक्या वक्तुं भगवतो गुणाः।। (110)
अपि वर्षसहस्रेण सततं पाण्डुनन्दन।

अर्जुन! यह है अजन्मा भगवान् महादेव का महामहिम स्वरूप। मैं सहस्रों वर्षोंतक लगातार वर्णन करता रहूँ तो भी भगवान् के समस्त गुणों का पार नहीं पा सकता।

सर्वैर्ग्रहैर्गृहीतान् वै सर्वपापसमन्वितान्।। (111)
स मोचयति सुप्रीतः शरण्यः शरणागतान्।

जो सब प्रकार की ग्रहबाधाओं से पीड़ित हैं और सम्पूर्ण पापों में डूबे हुए हैं, वे भी यदि शरण में आ जायँ तो शरणागतवत्सल भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें पाप-ताप से मुक्त कर देते हैं।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान्।। (112)
स ददाति मनुष्येभ्यः स चैवाक्षिपते पुनः।

वे ही प्रसन्न होने पर मनुष्यों को आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और प्रचुरमात्रा में मनोवाञ्छित पदार्थ देते हैं तथा वे ही कुपित होने पर फिर उन सबका संहार कर डालते हैं।

सेन्द्रादिषु च देवेषु तस्य चैश्वर्यमुच्यते।। (113)
स चैव व्यापृतो लोके मनुष्याणां शुभाशुभे।
ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरश्च स उच्यते।। (114)

इन्द्र आदि देवताओं में उन्हीं का ऐश्वर्य बताया जाता है, वे ही ईश्वर होने के कारण लोक में मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों के फल देने में संलग्न रहते हैं। सम्पूर्ण कामनाओं के ईश्वर भी वे ही बताये जाते हैं।

महेश्वरश्च महतां भूतानामीश्वरश्च सः।

बहुभिर्बहुधा रूपैर्विश्वं व्याप्नोति वै जगत्।। (115)

महाभूतों के ईश्वर होने से वे ही महेश्वर कहलाते हैं। वे नाना प्रकार के बहुसंख्यक रूपों द्वारा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं।

तस्य देवस्य यद् वक्त्रं समुद्रे तदधिष्ठितम्।
वडवामुखेति विख्यातं पिबत् तोयमयं हविः।। (116)

उन महादेवजी का जो मुख है, वह समुद्र में स्थित है। वह 'वडवामुख' नाम से विख्यात होकर जलमय हविष्य का पान करता है।

एष चैव श्मशानेषु देवो वसति नित्यशः।
यजन्त्येनं जनास्तत्र वीरस्थान इतीश्वरम्।। (117)

ये ही महादेवजी श्मशानभूमि (काशीपुरी) में नित्य निवास करते हैं। वहाँ मनुष्य 'वीरस्थानेश्वर' के नाम से इनकी आराधना करते हैं।

अस्य दीप्तानि रूपाणि घोराणि च बहूनि च।
लोके यान्यस्य पूज्यन्ते मनुष्याः प्रवदन्ति च।। (118)

इनके बहुत-से तेजस्वी घोर रूप हैं, जो लोक में पूजित होते हैं और मनुष्य उनका कीर्तन करते रहते हैं।

नामधेयानि लोकेषु बहून्यस्य यथार्थवत्।
निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विभुत्वात् कर्मणस्तथा।। (119)

उनकी महत्ता, सर्वव्यापकता तथा कर्म के अनुसार लोक में इनके बहुत-से यथार्थ नाम बताये जाते हैं।

वेदे चास्य समाम्नातं शतरुद्रियमुत्तमम्।
नाम्ना चानन्तरुद्रेति ह्युपस्थानं महात्मनः।। (120)

यजुर्वेद में भी परमात्मा शिव की 'शतरुद्रिय' नामक उत्तम स्तुति बतायी गयी है। अनन्तरुद्रनाम से इनका उपस्थान बताया गया है।

स कामानां प्रभुर्देवो ये दिव्या ये च मानुषाः।
स विभुःस प्रभुर्देवो विश्वंव्याप्नोति वै महत्।। (121)

जो दिव्य तथा मानव भोग हैं, उन सबके स्वामी ये महादेवजी ही हैं। ये देव इस विशाल विश्व में व्याप्त हैं; इसलिये विभु और प्रभु कहलाते हैं।

ज्येष्ठं भूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा मुनयस्तथा।
प्रथमो ह्येष देवानां मुखादस्यानलोऽभवत्।। (122)

ब्राह्मण और मुनिजन इन्हें सबसे ज्येष्ठ बताते हैं, ये देवताओं में सबसे प्रथम हैं; इन्हीं के मुख

से अग्निदेव का प्रादुर्भाव हुआ है।

सर्वथा यत् पशून् पाति तैश्च यद् रमते पुनः।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात् पशुपतिः स्मृतः।। (123)

ये सर्वथा पशुओं (प्राणियों) का पालन करते और उन्हीं के साथ खेला करते हैं तथा उन पशुओं के अधिपति हैं; इसलिये 'पशुपति' कहे गये हैं।

दिव्यं च ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यथा स्थितम्।
महयत्येष लोकांश्च महेश्वर इति स्मृतः ।। (124)

इनका दिव्य लिङ्ग ब्रह्मचर्य से स्थित है। ये सम्पूर्ण लोकों को महिमान्वित करते हैं; इसलिये महेश्वर कहे गये हैं।

ऋषयश्चैव देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
लिङ्गमस्यार्चयन्ति स्म तच्चाप्यूर्ध्वं समास्थितम्।। (125)

ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ इनके ऊर्ध्वलोकस्थित लिङ्गविग्रह (प्रतीक) की पूजा करती हैं।

पूज्यमाने ततस्तस्मिन् मोदते स महेश्वरः।
सुखी प्रीतश्च भवति प्रहृष्टश्चैव शङ्करः।। (126)

उस लिङ्ग अर्थात् प्रतीक की पूजा होने पर कल्याणकारी भगवान् महेश्वर आनन्दित होते हैं। सुखी, प्रसन्न तथा हर्षोल्लास से परिपूर्ण होते हैं।

यदस्य बहुधा रूपं भूतभव्यभवस्थितम्
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः।। (127)

भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में इनके स्थावर-जङ्गम बहुत से रूप स्थित होते हैं; इसलिये इन्हें 'बहुरूप' नाम दिया गया है।

एकाक्षो जाज्वलन्नास्ते सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा।
क्रोधाद् यश्चाविशल्लोकांस्तस्मात् सर्व इति स्मृतः।। (128)

यद्यपि उनके सब ओर नेत्र हैं तथापि उनका एक विलक्षण अग्निमय नेत्र अलग भी है, जो सदा क्रोध से प्रज्वलित रहता है; वे सब लोकों में समाविष्ट होने के कारण 'सर्व' कहे गये हैं।

धूम्ररूपं च यत् तस्य धूर्जटिस्तेन चोच्यते।
विश्वेदेवाश्च यत् तस्मिन् विश्वरूपस्ततः स्मृतः।। (129)

उनका रूप धूम्रवर्ण का है; इसलिये वे 'धूर्जटि' कहलाते हैं। विश्वेदेव उन्हीं में प्रतिष्ठित हैं, इसलिये उनका एक नाम 'विश्वरूप' है।

तिस्रो देवीर्यदा चैव भजते भुवनेश्वरः।
द्यामपः पृथिवीं चैव त्र्यम्बकश्च ततः स्मृतः।। (130)

वे भगवान् भुवनेश्वर आकाश, जल और पृथ्वी इन अम्बास्वरूपा तीन देवियों को अपनाते, उनकी रक्षा करते हैं, इसलिये त्र्यम्बक कहे गये हैं।

समेधयति यन्नित्यं सर्वार्थान् सर्वकर्मसु।
शिवमिच्छन् मनुष्याणां तस्मादेष शिवः स्मृतः।। (13 1)

ये मनुष्यों का कल्याण चाहते हुए उनके समस्त कर्मों में सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थों की समृद्धि(सिद्धि) करते हैं, इसलिये 'शिव' कहे गये हैं।

सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा।
यच्च विश्वं महत् पाति महादेवस्ततः स्मृतः।। (13 2)

उनके सहस्र अथवा दस हजार नेत्र हैं अथवा वे सब ओर से नेत्रमय ही हैं। भगवान् शिव महान् विश्व का पालन करते हैं; इसलिये 'महादेव' कहे गये हैं।

महत् पूर्वं स्थितो यच्च प्राणोत्पत्तिस्थितश्च यत्।
स्थितलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात् स्थाणुरिति स्मृतः।। (13 3)

वे पूर्वकाल से ही महान् रूप में स्थित हैं, प्राणों की उत्पत्ति और स्थिति के कारण हैं तथा उनका लिङ्गमय शरीर सदा स्थित रहता है; इसलिये उन्हें 'स्थाणु' कहते हैं।

सूर्याचन्द्रमसोर्लोके प्रकाशन्ते रुचश्च याः।
ताः केशसंज्ञितास्त्र्यक्षे व्योमकेशस्ततः स्मृतः।। (13 4)

लोक में जो सूर्य और चन्द्रमा की किरणें प्रकाशित होती हैं, वे भगवान् त्रिलोचन के केश कही गयी हैं। वे व्योम(आकाश) में प्रकाशित होती हैं; इसलिये उनका नाम 'व्योमकेश' है।

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं जगदशेषतः।
भव एव ततो यस्माद् भूतभव्यभवोद्भवः।। (13 5)

भूत, वर्तमान और भविष्य सम्पूर्ण जगत् भगवान् शंकर से ही विस्तार को प्राप्त हुआ है; इसलिये वे 'भूतभव्य भवोद्भव' कहे गये हैं।

कपिः श्रेष्ठ इति प्रोक्तो धर्मश्च वृष उच्यते।
स देवदेवो भगवान् कीर्त्यतेऽतो वृषाकपिः।। (13 6)

कपि कहते हैं श्रेष्ठ को और वृष नाम है धर्म का। वृष और कपि दोनों होने के कारण देवाधिदेव भगवान् शंकर 'वृषाकपि' कहलाते हैं।

ब्रह्माणमिन्द्रं वरुणं यमं धनदमेव च।
निगृह्य हरते यस्मात् तस्माद्धर इति स्मृतः।। (13 7)

वे ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, यम तथा कुबेर को भी काबू में करके उनसे उनका ऐश्वर्य हर लेते हैं; इसलिये 'हर' कहे गये हैं।

निमीलिताभ्यां नेत्राभ्यां बलाद् देवो महेश्वरः।
ललाटे नेत्रमसृजत् तेन त्र्यक्षः स उच्यते।। (138)

उन भगवान् महेश्वर ने दोनों नेत्रों को बंद करके अपने ललाट में बलपूर्वक तीसरे नेत्र की सृष्टि की, इसलिये उन्हें त्रिनेत्र कहते हैं।

विषमस्थः शरीरेषु समश्च प्राणिनामिह।
स वायुर्विषमस्थेषु प्राणोऽपानः शरीरिषु।। (139)

वे प्राणियों के शरीर में विषम संख्यावाले पाँच प्राणों के साथ निवास करते हुए सदा समभाव से स्थित रहते हैं। विषम परिस्थितियों में पड़े हुए समस्त देहधारियों के भीतर वे ही प्राणवायु और अपानवायु के रूप में विराजमान हैं।

पूजयेद् विग्रहं यस्तु लिङ्गं चापि महात्मनः।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते।। (140)

जो कोई भी मनुष्य हो, उसे महात्मा शिव के अर्चाविग्रह अथवा लिङ्ग (प्रतीक) की पूजा करनी चाहिये। लिङ्ग अथवा प्रतिमा की पूजा करनेवाला पुरुष बड़ी भारी सम्पति प्राप्त कर लेता है।

ऊरुभ्यामर्धमाग्नेयं सोमार्धं च शिवा तनुः।
आत्मनोऽर्धं तथा चाग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते।। (141)

दोनों जाँघों से नीचे भगवान् शिव का आधा शरीर आग्नेय अथवा घोर है तथा उससे ऊपर का आधा शरीर सोम एवं शिव है। किसी-किसी के मत में उनके सम्पूर्ण शरीर का आधा भाग 'अग्नि' और आधा भाग 'सोम' कहलाता है।

तैजसी महती दीप्ता देवेभ्योऽस्य शिवा तनुः।
भास्वती मानुषेष्वस्य तनुर्घोराग्निरुच्यते।। (142)

उनका जो शिव शरीर है, वह तेजोमय और परम कान्तिमान् है। वह देवताओं के उपयोग में आता है तथा मनुष्यलोक में उनका प्रकाशमान घोर शरीर 'अग्नि' कहलाता है।

ब्रह्मचर्यं चरत्येष शिवा यास्य तनुस्तया।
यास्य घोरतरा मूर्तिः सर्वानत्ति तयेश्वरः।। (143)

उनकी जो शिव मूर्ति है, वह जगत् की रक्षा के लिये ब्रह्मचर्य का पालन करती है और उनकी जो घोरतर मूर्ति है, उसके द्वारा भगवान् शंकर सम्पूर्ण जगत् का संहार करते हैं।

यन्निर्दहति यत् तीक्ष्णो यदुग्रो यत् प्रतापवान्।
मांसशोणितमज्जादो यत् ततो रुद्र उच्यते।। (144)

ये प्रतापी देवता प्रलयकाल में अत्यन्त तीक्ष्ण एवं उग्र रूप धारण करके सबको दग्ध कर डालते हैं और प्राणियों के रक्त, मांस एवं मज्जा को भी भक्षण करते हैं; अतः रौद्रभाव के कारण 'रुद्र' कहलाते हैं।

एष देवो महादेवो योऽसौ पार्थ तवाग्रतः।
संग्रामे शात्रवान् निघ्नंस्त्वया दृष्टः पिनाकधृक्।। (145)

अर्जुन! संग्रामभूमि में जो तुम्हारे आगे शत्रुओं का संहार करते हुए दिखायी दिये हैं, वे ये ही पिनाकधारी भगवान् महादेव हैं।

सिन्धुराजवधार्थाय प्रतिज्ञाते त्वयानघ।
कृष्णेन दर्शितः स्वप्ने यस्तु शैलेन्द्रमूर्धनि।। (146)
एष वै भगवान् देवः संग्रामे याति तेऽग्रतः।
येन दत्तानि तेऽस्त्राणि यैस्त्वया दानवा हताः।। (147)

निष्पाप अर्जुन! जब तुमने सिंधुराज के वध की प्रतिज्ञा की थी, उस समय स्वप्न में भगवान् श्रीकृष्ण ने तुम्हें गिरिराज के शिखर पर जिनका दर्शन कराया था, ये वे ही भगवान् शङ्कर संग्राम में तुम्हारे आगे – आगे चल रहे हैं। उन्होंने ही तुम्हें वे दिव्यास्त्र प्रदान किये थे, जिनके द्वारा तुमने दानवों का संहार किया है।

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
देवदेवस्य ते पार्थ व्याख्यातं शतरुद्रियम्।। (148)

पार्थ! यह देवाधिदेव भगवान् शिव के 'शतरुद्रिय' स्तोत्र की व्याख्या की गयी है। यह स्तोत्र वेदों के समान परम पवित्र तथा धन, यश और आयु की वृद्धि करनेवाला है।

सर्वार्थसाधनं पुण्यं सर्वकिल्बिषनाशनम्।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखभयापहम्।। (149)

इसके पाठ से सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि होती है। यह पवित्र स्तोत्र सम्पूर्ण किल्बिषों का नाशक, सब पापों का निवारक तथा सब प्रकार के दुःख और भय को दूर करनेवाला है।

जो मनुष्य भगवान् शंकर के ब्रह्मा, विष्णु, महेश और निर्गुण – निराकर – इन चतुर्विध स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले इस स्तोत्र को सदा सुनता है, वह सम्पूर्ण शत्रुओं को जीतकर रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है। परमात्मा शिव का यह चरित सदा संग्राम में विजय दिलानेवाला है, जो सदा उद्यत रहकर शतरुद्रिय को पढ़ता और सुनता है तथा मनुष्यों में जो कोई भी निरन्तर भगवान् विश्वेश्वर का भक्तिभाव से भजन करता है, वह उन त्रिलोचन के प्रसन्न होने पर समस्त उत्तम कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। कुन्तीनन्दन! जाओ, युद्ध करो। तुम्हारी पराजय नहीं हो सकती है। क्योंकि तुम्हारे मन्त्री, रक्षक और पार्श्ववर्ती साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

संजय कहते हैं – शत्रुओं का दमन करनेवाले भरतश्रेष्ठ! युद्धस्थल में अर्जुन से ऐसा कहकर पराशरनन्दन व्यासजी चले गये। (श्रीमहाभारत – द्रोणपर्व – नारायणास्त्र मोक्षपर्व अ. 202)

(महाभारत का उपर्युक्त अंश गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित सटीक 'महाभारत' से लिया गया है।)

❁❁❁❁❁❁